Peer Reviewed Refereed Journal ISSN : 2278 – 5639
Global Online Electronic International Interdisciplinary Research Journal (GOEIIRJ)
{Bi-Monthly} Volume – XI Issue – IV July – August 2022

नारी मन की छटपटाहट : कोमल गांधार

जान्हवी जितेंद्र मोहिते,
रुम न.104, पहिला मजला, शेवंता हाइट्स,
गोपीनाथ चौक, डोम्बिवली (पश्चिम) महाराष्ट्र

मानव जीवन हमेशा मृदु स्वरों के राग से सजा नहीं रहता | उसके जीवन के स्वर हमेशा संवादी नहीं रहते और ना ही यह संभव है कि परिस्थिति व परिवेश भी सदैव उसके अनुरूप ही हो | जहाँ उसका मनचिता न हो वहां विरोधी स्थितियों में व जगत की संकीर्णता में जकड जाता है | ऐसे में मानव कभी भी संतुष्ट व खुश नहीं रह सकता | उसके मन में सदा ही संघर्ष के बवंडर उठते रहते हैं और परिणामतः वह अकुला जाता है, कराहता है, ललकारता है और कभी-कभी आक्रोश से भी भर उठता है और अभिशाप भी दे देता है | लेखक की सामाजिक चेतना एवं संवेदना साधारण जनों की ऐसी अभावग्रस्त, दुखद, विषम परिस्थितियों से जब सम्बद्ध हो जाती है तो लेखक विक्षुब्ध हो मानववादी चेतना से अनुप्राणित हो ऐसे जीवनों का संवेदनापूर्ण चित्र अपनी रचनाओं में उकेरता है |

Golbal Oline Electronic International Reserch Journal's licensed Based on a work at *http://www.goeiirj.com*

हिंदी नाटकों का जन्म भी विरोध, क्षोभ, विद्रोह तथा संघर्ष के ऐसे ही वातावरण में हुआ | नाटक साहित्य की अत्यंत प्राचीन व रौचक विधा है | इसे 'दृश्य काव्य' कहते हैं | संस्कृत साहित्य में इसे 'रूपक' कहते हैं | 'नाटक' का अर्थ 'नट' होता है | कार्य अनवीकरण में कुशल व्यक्ति सम्बन्ध रखने के कारण ही साहित्य विधा में नाटक का सृजन करते हैं | वस्तुतः हम कह सकते हैं कि 'नाटक' साहित्य की वह विधा हैं, जिसकी सफलता का परिक्षण रंगमंच पर होता है | "एक कहानी या काव्य को दृश्य रूप में पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करना ही नाटक कहलाता है |"

भारतीय साहित्य में सृजन की दृष्टी से महाभारत सर्वाधिक उर्वर उपजीव्य रहा है | रचनाकार इसके विभिन्न कथासूत्रों, आख्यानों, पात्रों आदि को अपनी आवश्यकतानुसार अपनी विषय वस्तु बनाकर इनमें नए सिरे से अर्थान्वेषण करते हैं | हम सभी यह बात जानते हैं कि आज का समय भी महाभारत के शांति पर्व के जैसा ही चल रहा है | मूल्य क्षत-विक्षत होगये हैं | आस्था और विश्वास हर जगह चोटिल होते हुए दिखाई दे रहे हैं | आस्था-अनास्था द्वंद्व ग्रस्त है | निराशा व असुरक्षा की भावना सर्वव्याप्त हो चुकी है | मृत्यु बोध से मानव त्रस्त है | संत्रास, कुंठा, विघटन, प्रवंचना, अजनबीपन, आशंका, अविश्वास, विद्रुपता की धुंध को चीरते हुए शंकर शेष ने आज के घुटते हुए मानव की संवेदना को प्रस्तुत किया है इन सभी दुःख और वेदना से भरे स्वरों को अपनी अंतरात्मा की वाणी देकर | यह वाणी यदि विद्रोह की भी हो तो अच्छी लगती है क्योंकि इस विद्रोह के पीछे व्यक्तिगत लाभ की आकांक्षा नहीं है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का महती उद्येश्य निहित है, सामजिक चेतना का प्रसार काम्य है |

आधुनिक हिंदी नाटकों का आरम्भ २० वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में आज़ादी की लड़ाई के दौरान राष्ट्रीय जागरण के वातावरण में हुआ | व्यष्टि और समष्टि दोनों स्तरों पर भारतीय आत्मा ने जिस अन्तः संघर्ष व विद्रोह का अनुभव किया उसी का नाट्यगत प्रस्तुतीकरण नाटकों में हुआ | विदेशी शासन की स्वेछाचारिता, पुलिस के अमानवीय व्यवहार में होती

वृद्धि, भारतियों की दयनीय स्थिति और चारो और फैली अतृप्ति, आक्रोश और विद्वेष पूर्ण विद्रोह तथा जन जागृति ये सभी तत्व सर्वप्रथम भारतेंदु के नाटकों में फिर उनके समकालीन और परवर्ती रचनाकारों के नाटकों में उद्घाटित हुए | जैसा कि हम सभी इस बात से भलीभांति परिचित हैं कि हिंदी नाटकों के दूसरे दौर यानि प्रसाद युग में देश की संस्कृति की अवनति से उत्पन्न आकुलता एवं असंतुष्टि के कारण विद्रोह का स्वर उनके नाटकों में मुखरित हुआ | प्रसादोत्तर नाटकों ने बदलते परिवेशों के अनुरूप परंपरागत जीवन आदर्श एवं मूल्यों की स्थापना के उद्येश्य से देश-प्रेम, आत्म बलिदान और हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना को जनता तक पहुँचाने का कार्य किया | साथ ही इन नाटकों ने बाधक तत्वों का विरोध करने की आवश्यकता भी प्रतिपादित की | मुख्यतः इन नाटकों ने मनोविश्लेषण की विलक्षण क्षमता के साथ जीवन की उलझी हुई रेखाओं को तथा जनजीवन विडंबनाओं के साथ स्त्री की पराधीनता के विरोध में एक गुंजन को भी अंकित करने का अपना मुख्य लक्ष्य बनाया |

अतीत संस्कार के रूप में मानव मन में विद्यमान होता है और जीवन सहज ही मानव को अतितावलोकन के लिए निमंत्रित करता है | अतीत की भूलों के निर्देशन से भविष्य की सुरक्षा की जासकती है | और इस प्रकार वर्तमान की विसंगतियां भी कुछ हद तक दूर हो सकती है | और शायद इसीलिए इन आधुनिक नाटककारों ने उन सारे ऐतिहासिक व पौराणिक पात्रों को खोज निकाला है जो अपनी क्षमताओं के बावजूद अप्रकाशित व अस्पृश्य रह गए थे | ऐसे पात्रों के द्वारा आधुनिक सन्दर्भ में उसी परिवेश का नया परिचय देकर वर्तमान जीवन मूल्यों एवं मानवीय अनुभूतियों की तीव्र वेदना व कसमसाहट को उन्होंने आँका | इस इतिहास व पूरण के प्रति मोह का पहला कारण था गौरवमई अतीत को दोहराते हुए वर्तमान विसंगतियों से पलायन कर क्षणिक आत्मसंतोष पाना तो दूसरा कारण था अतीत द्वारा वर्तमान जीवन की विसंगतियों का उदघाटन करना | प्रसाद से प्रराम्भ हुई इस प्रवृत्ति ने आठवें दशक में आकर कलात्मक स्तर पर नए प्रतिमानों की स्थापना की | 'रस गंधर्व', 'शम्बूक की हत्या', 'उर्वर्शी', 'कोमल गांधार' आदि नाटक इसी श्रंखला की कड़ियाँ हैं |

आज़ादी के बाद हिंदी साहित्य को प्रतिभापूर्ण लेखन द्वारा जिन साहित्यकारों ने समृद्ध किया था उनमें शंकर शेष का नाम भी अविस्मरणीय रहेगा | जी...हाँ.. शंकर शेष जिन्होंने कुल २१ नाटक, ६ एकांकी नाटक, २ बाल नाट्य, ४ अनुदित नाटक, ४ उपन्यास तथा ३ अनुसंधानात्मक प्रबंधों की रचना अत्यंत सफल व कुशल तरीके से कर हिंदी साहित्य को शिरोमणीय स्थान प्रदान किया | इन्होने १० वर्ष तक अध्यापन, ३ वर्ष तक अनुसंधान अधिकारी, सन १९७० से १९७४ तक मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल में सहायक संचालक के रूप में कार्य, १९७४ के बाद भारतीय स्टेट बैंक में सफलता पूर्वक कार्य किया | **"अंतर्विरोधी प्रवृत्तियों के बोझ तले कराह रहे मनुष्य मन की वेदना का विष पिने का संकल्प लेकर शेष के कलाकार मन ने राजपथ के गलीचों व नर्म बिछौनों का मोह त्याग दिया और मानव के अंतर्मन में बैठने की ललक इन्हें जनपथ पर खींच लाई |"(१)** बचपन से ही अपने घर में धार्मिक ग्रंथों के श्रवण होते रहने से इनके मन पर कई पौराणिक व धार्मिक पात्रों का प्रभाव हुआ | विशेष कर भीष्म, द्रौंणाचार्य और गांधारी जैसे पात्रों को इन्होने अपने मन मस्तिष्क में रचा-बसा लिया था | इसीका परिणाम शायद इन्होंने आधुनिक मानव मन की विभिन्न स्थितियों, उसके मन की गहराईयों, सूक्ष्म संकीर्ण व्यापारों, आत्म संघर्षों का मर्मस्पर्शीय तथा अद्वितीय चित्रण मिथकों के सहारे अपने विभिन्न नाटकों में किया | साथ ही इन्होने स्त्री जीवन की कोमल भावनाओं को कुचल डालने की प्रवृत्ति के चित्रण के साथ- साथ आधुनिक भारतीय समाज की नारी की अस्वीकार्यता को हृदयंगम बनाने वाला नाटक **'कोमल गांधार'** जिसमें हैं आधुनिक जीवन की समस्याएं और मानवीय अनुभूतियों की तीव्र वेदनाये |

नाटक में अम्बा, अम्बालिका और सत्यवती के आंसुओं में डूबता जा रहा था कुरुवंश | सत्यवती के बेटों के लिए भीष्म ने पहले ही अपना राज्य अधिकार और ब्रम्हचर्य व्रत की घोषणा कर दी थी | कुरु वंश की वृद्धि के लिए और माता सत्यवती को प्रसन्न रखने के लिए इन्हें यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी थी | दूसरी तरफ भीष्म को यह चिंता भी थी कि धृतराष्ट्र किसी दासी के मोहपाश में बंध गया था इसलिए कहीं दासी द्वारा शुद्र पुत्र ना होजाये राजघराने में, इसलिए उन्होंने धृतराष्ट्र को स्वयंवर में भेजने की बात सोचते हैं | उनके सामने आनेवाले राजकुमार का प्रश्न था इसलिए उन्होंने गांधार नरेश की पुत्री गांधारी से धृतराष्ट्र का विवाह कर देते हैं | **"दो राजरक्त शरीर और एक कर्मकांड |"(२)** झूठ बोलकर विवाह करने के बाद गांधारी की मनोंव्यथा को लेखक ने इतनी मार्मिकता उभारा है कि पढ़ते हुए पाठक को अंतर्मन का दर्द महसूस हुए बिना नहीं रहता है | अपने विवाह की तयारियों और ससुराल के वैभव से अभिभूत गांधारी इतनी पुलकित थी मानों प्रातःकाल के सुन्दर कोमल फूल उसके मन मंदिर में ही खिल उठे हो | भोली गांधारी यह नहीं जानती थी कि अब उसका ऐसा जीवन संघर्ष आरम्भ हुआ है जिसका न आदि, न मध्य और ना ही अंत है | जब विवाह के एक दिन पूर्व उसे अपने ससुराल हस्तिनापुर में एक दासी के मुख से पता चलता है कि उसका भावी पति आँखों अंधा है | अपने खिलाफ रचे गए इस षड़यंत्र में न केवल भीष्म, संजय ही हैं बल्कि उसके पिता, भाई और स्वयं पति भी शामिल हैं, यह नुकीली बात उसे अंतर्मन से तोड़ देती है और जीवन भर उसके मन को कचोटती रहती है | यही से शुरू होती हैं नारी मन की अथाह वेदना का सागर जो अब गांधारी के मन में खून की तरह लहलहाने लगता है | अचानक हुई दुर्घटना को चाहे वह विधि का विधान समझ कर उसे स्वीकार भी करले लेकिन यह तो सोच विचार कर रचा गया षड़यंत्र जिसमें उसके अपने ही शामिल हैं | यही दुःख न जाने कब नासूर बनजाता है उसे भी पता नहीं चलता है | घोर दुःख, क्रोध में, क्रोध, घृणा में, घृणा, विद्रोह में, विद्रोह, दृढ़ता में और दृढ़ता प्रतिशोध में परिणित होजाती है | **"ये लोग अब समझ ले स्त्री खाली ज़मीं नहीं होती, जिसे आसानी से रौंद कर शांति से जिया जा सके ! कुरु वंश को इसकी कीमत चुकानी ही होगी, दासी!"(३)** उसे अब विवाह कर लेना अत्यंत दुष्कर लग रहा था किन्तु परम्परा और मर्यादाओं की बेड़ियों में जकड़ी कोई भारतीय लड़की आज तक ऐसा नहीं कर पायी | लेखक कहते हैं—**"काश ! वह जा सकती, तो स्त्री की मुक्ति के लिए एक नई दिशा खुल जाती, पर वह साहस नहीं बटोर पाई | तिरस्कार को केवल निजी स्तर पर दिखा कर रह गई, उसे विरोध की सार्वजनिक परिभाषा नहीं दे पाई |"(४)** शायद कुरु वंश को स्त्रियों के शाप की आग से ही जलना विधाता ने लिख दिया था | गांधारी ने सोचा—**"शुद्रता, ढोंग और पाखण्ड ! सौम्य चेहरों के पीछे छुपे विकराल भेडियों की आँखें |"(५)** इन सब ढोंगी और मक्कार लोगों को वह अपनी आँखों से देखना नहीं चाहती थी इसलिए उसने सदा के लिए अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली थी | यह सब वह अपना विद्रोह या प्रतिशोध दिखाने के लिए कर रही थी लेकिन इसमें भी उसे आदर्श बना कर चिर प्रसिद्द कर दिया गया था की पतिव्रता हो तो गांधारी के जैसी जो पति के लिए अपनी सही आँखों को जिंदगी भर के लिए कपडे से बंद कर ली | इसके इस कार्य से कुरु वंश की प्रतिष्ठा में और भी चार चाँद लग गए | उसी के शब्दों में उसके इस कृत्य का पछतावा हम देख सकते हैं—**"मैं क्या जानती थी की घृणा से जन्मी प्रतिमा लोगो के लिए आदर्श बन जाएगी | मैं क्या जानती थी की अपने तिरस्कार से स्त्री क्षमता का एक नया उदाहरण रच रही हूँ | क्या करूँ, संस्कारों ने मुझे आखिरी क्षण भी डरा दिया |"(६)** परिवार व समाज ने उसकी घृणा को उत्सर्ग का नाम देकर स्त्री क्षमता का एक नया उदहारण बनाकर महासतित्व का, और देवी का पद दे दिया और इस तरह वह एक सुनहरे पिंजरे में, अपने ही बनाये किले में बंदी होगई | वहां...जहाँ से धृतराष्ट्र के कहने पर भी न बाहर आ सकी ना छुटकारा पा सकी | प्रतिशोध का यह प्रयत्न मात्र उसके जीवन का घोर संताप एक विकट विडम्बना बनकर रह गया |

अपने यौवन के सहज स्वप्नों के विपरीत जन्मांध पति से विवाह होने से गांधारी की अभिलाषाएं, कामनाये, और वैवाहिक सुख की सारी इच्छाएं नष्ट होगई थी | अंधे की लाठी बनने की नियति तो उसने स्वीकार कर ली थी | बाहरी स्तर पर वह व्यक्तित्वहिन व त्यागमूर्ति बनकर सामाजिक मर्यादाओं का और पत्निवृत धर्म का पालन करते हुए संतानों को जन्म देने लगी | परन्तु अपनी उन यौवन अभिलाषाओं का क्या जो अधूरी रह गयी थी...? उसके जीवन के सभी स्वप्न अधूरे ही रह गए थे जो उमड़-घुमड़ कर उसे दिन-प्रतिदिन आकुलता के बवंडर में धकेले जा रहे थे | नारी के कोमल मन की छटपटाहट को, उसकी सहज आहत को क्या किसी भी पुरुष ने ध्यान से सूना था...? इसी कोमल मन की व्यथा को शंकर शेष ने अत्यंत मर्मान्तक ढंग से पुरुष प्रधान समाज के समक्ष कुशलता के साथ रखा | ऐसा नहीं की यह पीड़ा तब की है.. और आज समाप्त होगई है...जी नहीं...तब से आज तक पीड़ा ज्यों की त्यों बनी हुई है... ! हाँ... इतना अवश्य है कि दुनिया की आधी आबादी स्त्रियों की संख्या ज्यादा होने से भले ही प्रतिशत में पीड़ा कम आंकी जा रही है मात्र पीड़ा और पीड़ा का ताप तो अभी भी उसी अनुपात में व्याप्त है | अधूरे सपनों से उसका अंतर्मन धधकता अग्निकुंड बन गया जिसके ताप से उसके अपनों का व्यक्तित्व दग्ध होने लगा | वास्तव में विवाह होजाने पर भी जब स्नेहीजन यहाँ तक की उसका पति भी जब इस सहृदय कोमल नारी का इस्तेमाल केवल उत्तराधिकारी के लिए करेगा तो उस कोमल गांधारी का मन अपनों से कैसे जुड़ेगा...? नतीजा धृतराष्ट्र द्वारा अनेकानेक सच्चाई के असंख्य प्रमाण देने पर भी गांधारी का टूटा विश्वास तंतु जुड़ ना पाया | पति-पत्नी के बीच कभी न गिरने वाली दीवार खड़ी होगई | ओढ़े हुए अंधत्व और अहम् के कारण उसका पत्नीत्व और मातृत्व भी उससे दूर चला गया |

इसी दौरान भीष्म ने पांडू का भी विवाह करवा दिया था | यहाँ से शुरू होती है गांधारी के साथ कुंती की जीवन तुलना लगातार की जाने वाली यह तुलना गांधारी के लिए मानों अभिशाप बन गई थी | अब वह मानसिक कुंठाओं से संकीर्ण बन गई थी | उसके स्त्री सुलभ मत्सर तथा स्पर्धा भाव उसे महा सतीत्व की और नहीं लेजा रहे थे बल्कि अब उसकी पहचान साधारण स्त्रियों की तरह हो गई थी | अगर वह महासती होती तो पति के अधूरेपन को पूर्णता प्रदान करती, उसकी आँखों की रौशनी बनती उसे अपनी आँखों से दुनिया दिखाती ना की अपनी ही आँखों पर पट्टी बाँध कर पति के प्रगति के मार्ग में बाधा बनती | अगर उसने अन्याय सहा है तो वह चाहती तो द्रोपती के साथ चिर हरण जैसा अन्याय कभी ना होने देती | यहाँ तक की वह तो कुंती की जित पर विश्वास भी ना करती | वह कहती है –**"नहीं शकुनि, कुंती नहीं जीत पाएगी | मैं कहती हूँ, कुंती नहीं जीत पाएगी !"(७)** हालांकि कुंती के साथ भी धोखा ही हुआ था किन्तु कुंती ने अपने दुःख को जड़ता और संज्ञाहीनता की भाषा नहीं दी बल्कि उसका उदात्तीकरण किया | निराशा में एक सार्थक व्याख्या खोजी | और गांधारी ने दुःख में जीवन की गतिशीलता को नकार कर उदासीनता व कडवाहट ही उगली और स्वयं ही अनदेखी और अनगिनत दीवारों में जकड़ती चली गयी | धृतराष्ट्र के सचमुच के अन्धत्व और गांधारी के थोथे व विद्रोह युक्त अंधत्व से उनकी सारी संताने दिशाहीन व अहंकारी बन गयी थी | बच्चें भ्रांत हो गलत दिशाओं में भटकते व माँ के दुलार, पुचकार और ममता के लिए तरसते थे | उन्ही कौरवों के शब्दों में हम उनका अधूरापन समझ सकते हैं---**"आखिर युद्ध विद्या हमने भी द्रोणाचार्य से ही सीखी...पांडवों ने भी | हम संख्या में अधिक होते हुए भी...क्यों हम एक भी पांडव को नहीं मार पाए...? कहाँ रह गया अधूरापन हमारे जीवन में !"(८)** दुर्योधन को यही दुःख सालता गया कि मंदिर के महकलश जैसी माँ उन पर विश्वास कर पाई और ना ही उनका निर्माण कर पाई | स्वयं दुर्योधन कहता है—**"प्रेम से कोई बिगड़ता नहीं है काका, हमें तो माँ बाप ने केवल अस्तित्व दिया, हमारी रचना नहीं की | जा...माँ...तू असाधारण ही बनी रह, हम साधारण लोगों की असाधारण माँ ! हम साधारण ही जन्में वैसे ही मरेंगे जा... माँ..!"(९)**

स्वयं पर हुए अन्याय का विरोध करने वाली, स्त्री जीवन की अनंत संभावनाओं की उपेक्षा करने वाली गांधारी | बेचारी ! ओरों के लिए जो ममता व वात्सल्य का जो क्षण था वह उसके लिए मोह का क्षण बन गया | पत्नित्व से मातृत्व आखिर सबल हो उठा | आँखों की पट्टी की दृढ़ प्रतिज्ञा के बावजूद भी अपने पुत्र को देखने की चाह में पट्टी आखिर हटा ही ली | एक और सामजिक मर्यादाओं के पालन के लिए सचेत और दूसरी और अपने अधिकारों के छिनने से उद्वेग और विद्रोह से भरी गांधारी के माध्यम से नाटककार ने आधुनिक नारी की सत्ता मूलक समस्याओं को प्रकाश में लाने का सफल प्रयास किया है | प्राचीन और नविन, मिथ और यथार्थ की परस्पर छेड़ देने वाली रेखाएं यहाँ उद्घाटित हुई है | लेखक ने इस नाटक में स्त्री जीवन से जुड़ें अनेकानेक भावनात्मक प्रश्न उठाए हैं—**"स्त्री को समझने के लिए कभी शरीर के पार मन में भी जाना होता है |"(१०)** सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं व कर्तव्यों की आड़ में पाप-पुण्य की विवेचना के बिना स्त्री पर होने वाले अत्याचारों तथा गलतियों की और व्यक्ति को धकेल देने वाली नैतिक परम्परा एवं सामाजिक नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाने के साथ ही साथ नारी की अस्मिता के सवाल भी उठाएं हैं कि क्या वह समझौते के रूप में आदान-प्रदान की जाने वाली वस्तु है..? भीष्म के सपने बेच कर सत्यवती खरीदी गई | अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका लूट कर सामान की तरह लाई गई| गांधारी पूछती है—**"ये लोग समझते क्या है...? मैं एक स्त्री हूँ, इसलिए मुझ पर अत्याचार करने का इन्हें एक नैसर्गिक अधिकार प्राप्त है...सब एक जात के हैं...मेरे पिता, भीष्म, भाई और यहाँ तक कि मेरा भावी पति भी।"(११)** प्रश्न अत्यंत गंभीर है..गांधारी स्त्री है क्या केवल इसीलिए उसके जीवन के महत्वपूर्ण फैसलों पर उसका कोई अधिकार नहीं...? क्यों नकार दिया गया उसके अस्तित्व को पूरी तरह से ...? क्या कुरु कुल में स्त्री का स्वाभिमान कोई अर्थ नहीं रखता ...? उसकी कोई अस्मिता नहीं है क्या...? राजनीति इतनी क्रूर होती है क्या...? क्या राजनीति व्यक्ति को इतना पतित बना सकती है...? एक आक्रोश यह भी है कि सदैव यही समझा जाता है कि स्त्री एक खाली ज़मीन नहीं जिसे आसानी से कोई भी इसका क्रय-विक्रय कर सके | यह कोई भेट उपहार की भी वस्तु नहीं है और ना ही यह लूट में एक सामान की तरह कमज़ोर हाथ से मज़बूत हाथ में जाती रहे | पीढ़ी दर पीढ़ी से ऐसा ही चले आ रहा है फिर चाहे वह भीष्म हो या अन्य कोई धनाढ्य बुजुर्ग पुरुष हो या कोई युवा.. या सभी नारी को एक खाली ज़मीन, उपहार की वस्तु या युद्ध में जितने के बाद लूट कर ले जाने की संपत्ति और संतान उत्पत्ति की मशीन ही समझते हैं और कोई नहीं | लेखक ने ऐसे अनेकानेक मार्मिक प्रश्नों की बौछार लगाई है अपने इस नाटक में | शंकर शेष ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से मानवीय दृष्टी को पकड़ा है | गांधारी के माध्यम से वर्तमान संवेदानाओं के स्पंदनों को उभारा हैं | लेखक ने वर्तमान समय में विकृत होती राजनीति, पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी छटपटाहट, उसकी अवहेलना और दुर्गति, हमेशा ही उसे वस्तु समझना ना की इंसान और तो और यह सब उसकी नियति है ऐसा भी समाज कहता है | मानवीय संबंधों में व्याप्त अंतर्विरोध, तनाव, टकराहट, अहम् तथा व्यक्ति के जीवन में फैला अन्याय और शोषण तथा राजनीति का हर एक क्षेत्र में कुत्सित तरीके से हस्तक्षेप... यह सब लेखक ने व्यापकता से फलक पर उतारा है | लेखक ने यह भी बताया है कि कर्तव्यों की आड़ में पाप या गुनाह करना हमारी नियति बन गई है |

और अंत में...

आज नारी शिक्षा, उसके आर्थिक स्वावलंबन और नारी मुक्ति पर विशेष जोर दिया जाता है | पर आज भी नारी चाहे वो महारानी हो या साधारण स्त्री, अमिर हो या गरीब, विवाहित हो या कुमारिका, स्वावलंबी हो या परावलम्बी उसकी स्थितियों में बहुत ज्यादा अंतर नहीं आया है | अभी उसके अच्छे दिन आना बाकी है | सबका कोमल गांधार यानि की

कोमल मन और उस कोमल मन का कोमल भाव कही न कही खोया सा है | आवश्यकता है उसके इस कोमलमन के भावों की रक्षा करने की |

सन्दर्भ सूची---

1. राजपथ से जनपथ, नट शिल्पी शंकर शेष—डॉ. सुरेश गौतम एवं डॉ. विणा गौतम, पृष्ठ संख्या १७
2. कोमल गांधार—डॉ. शंकर शेष—पृष्ठ संख्या—१९
3. कोमल गांधार, डॉ. शंकर शेष, पृष्ठ संख्या ३८
4. कोमल गांधार—डॉ. शंकर शेष—पृष्ठ संख्या—५१-५२
5. वही पृष्ठ संख्या—४९-५०
6. वही—पृष्ठ संख्या -५१
7. वही—पृष्ठ संख्या ७३
8. वही—पृष्ठ संख्या—८५
9. वही—पृष्ठ संख्या –८७—८८
10. वही--पृष्ठ संख्या—६७
11. वही—पृष्ठ संख्या—३७